The Academic
International Journal of Multidisciplinary Research

An Online Peer Reviewed / Refereed Journal
Volume 4 | Issue 10 | October 2026
ISSN: 2583-973X (Online), SJIF IF(2026): 5.6
Website: www.theacademic.in

# इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में आदिवासी समाज की लोक-संस्कृति और आधुनिकीकरण के प्रभाव से वर्तमान परिदृश्य

**तारा बनवासी, डॉ.ममता उपाध्याय**

शोधार्थी हिंदी विभाग अवधेश प्रताप सिंह विश्विद्यालय रीवा

सह -प्राध्यापक हिंदी विभाग शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय रीवा

**DOI : https://doi.org/10.5281/zenodo.24463474**

**ARTICLE DETAILS**

**Research Paper**

**Received:** 31-10-2026

**Accepted:** 05-11-2026

**Published:** 20-11-2026

**Keywords:**

आदिवासी समाज, लोक-संस्कृति, हिंदी उपन्यास, आधुनिकीकरण, वैश्वीकरण, विस्थापन, सांस्कृतिक अस्मिता, प्रकृति, लोकपरंपरा।

**ABSTRACT**

इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में आदिवासी समाज का चित्रण भारतीय साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति के रूप में उभरा है। आदिवासी समाज की लोक-संस्कृति, परंपराएँ, लोकगीत, लोककथाएँ, धार्मिक विश्वास, प्रकृति के साथ संबंध, सामुदायिक जीवन और सांस्कृतिक अस्मिता उसकी विशिष्ट पहचान के आधार हैं। दूसरी ओर, औद्योगीकरण, वैश्वीकरण, नगरीकरण, खनन परियोजनाओं, बाजारवाद, शिक्षा, संचार माध्यमों तथा विकास संबंधी नीतियों ने आदिवासी जीवन को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। इन परिवर्तनों के परिणामस्वरूप आदिवासी समाज के सामने सांस्कृतिक संरक्षण, आर्थिक आत्मनिर्भरता, भूमि-अधिकार, विस्थापन, भाषाई संकट और पहचान से संबंधित अनेक प्रश्न उपस्थित हुए हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में आदिवासी लोक-संस्कृति के स्वरूप तथा आधुनिकीकरण से उत्पन्न सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तनों का विश्लेषण करना है। अध्ययन के लिए गुणात्मक एवं पाठ-विश्लेषणात्मक शोध-पद्धति अपनाई गई है। रणेंद्र के ग्लोबल गाँव के देवता और गायब होता देश, महुआ माजी के मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ तथा समकालीन आदिवासी विमर्श से संबंधित आलोचनात्मक अध्ययनों को प्रमुख संदर्भ बनाया गया है। अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि आधुनिकीकरण केवल प्रगति और सुविधाओं का

Disclaimer: The opinions, interpretations, conclusions, recommendations, analyses, and statements expressed in this research article are solely those of the author(s) and do not reflect the views, policies, or positions of the Publisher, Chief Editor, Editors, Editorial Board, Reviewers, or their affiliated institutions. The author(s) are solely responsible for ensuring the originality, authenticity, and integrity of the manuscript and for ensuring that it is free from plagiarism, AI-generated content, copyright infringement, data falsification, and any other form of academic misconduct.

माध्यम नहीं है, बल्कि उसका स्वरूप इस बात पर भी निर्भर करता है कि विकास की प्रक्रिया में स्थानीय समुदायों की सहमति, सांस्कृतिक अधिकार और प्राकृतिक संसाधनों पर उनके पारंपरिक संबंधों को कितना महत्त्व दिया जाता है। हिंदी उपन्यास आदिवासी समाज को केवल पिछड़ेपन या अभाव के प्रतीक के रूप में नहीं, बल्कि अपनी संस्कृति, ज्ञान-परंपरा, संघर्षशीलता और आत्मनिर्णय की आकांक्षा वाले समुदाय के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

**प्रस्तावना:-**

भारतीय समाज की सांस्कृतिक विविधता में आदिवासी समुदायों का विशिष्ट स्थान है। इन समुदायों की जीवन-पद्धति, भाषाएँ, लोकविश्वास, सामुदायिक संगठन, प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण और पारंपरिक ज्ञान भारतीय संस्कृति को बहुआयामी बनाते हैं। आदिवासी समाज का अध्ययन केवल उसकी आर्थिक स्थिति अथवा सामाजिक समस्याओं तक सीमित नहीं किया जा सकता। उसकी सांस्कृतिक परंपराएँ, ऐतिहासिक स्मृतियाँ, मौखिक साहित्य और प्रकृति के साथ विकसित संबंध भी उसके सामाजिक अस्तित्व को समझने के लिए आवश्यक हैं।

हिंदी साहित्य में आदिवासी जीवन का चित्रण लंबे समय तक मुख्यधारा की दृष्टि से प्रभावित रहा। अनेक रचनाओं में आदिवासी समुदायों को प्राकृतिक जीवन जीने वाले, सामाजिक रूप से पिछड़े अथवा बाहरी हस्तक्षेप से प्रभावित समूहों के रूप में प्रस्तुत किया गया। हालाँकि समकालीन साहित्य में यह दृष्टिकोण परिवर्तित हुआ है। आदिवासी समाज अब केवल किसी दूसरे लेखक की दृष्टि का विषय नहीं, बल्कि अपनी अस्मिता, अधिकारों और सांस्कृतिक अनुभवों को व्यक्त करने वाला सक्रिय सामाजिक पक्ष भी है। समकालीन

हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श ने प्रतिनिधित्व, सामाजिक न्याय, भूमि-अधिकार और सांस्कृतिक स्वतंत्रता जैसे प्रश्नों को प्रमुखता प्रदान की है (Vijayan & Umamaheshwari, 2022)।

इक्कीसवीं सदी में उदारीकरण, वैश्वीकरण और औद्योगिक विकास की प्रक्रियाओं ने आदिवासी जीवन को नए संदर्भों में प्रभावित किया है। खनिज संसाधनों की खोज, बड़े बाँधों का निर्माण, औद्योगिक परियोजनाओं का

विस्तार, वनों पर नियंत्रण और शहरी बाजारों का प्रभाव अनेक आदिवासी समुदायों के जीवन में परिवर्तन के कारण बने हैं। विकास की इन प्रक्रियाओं के साथ शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं, संचार तकनीक और रोजगार के नए अवसर भी सामने आए हैं। इसलिए आधुनिकीकरण को केवल नकारात्मक अथवा केवल सकारात्मक परिवर्तन के रूप में देखना उचित नहीं होगा।

हिंदी उपन्यास इस जटिल स्थिति को समझने का महत्वपूर्ण माध्यम हैं। उपन्यासों में पात्रों के दैनिक जीवन, पारिवारिक संबंधों, सामुदायिक स्मृतियों, धार्मिक मान्यताओं और सामाजिक संघर्षों के माध्यम से उन परिवर्तनों को अभिव्यक्त किया जा सकता है जिन्हें सामान्य आँकड़े हमेशा पूरी तरह स्पष्ट नहीं कर पाते। इस

दृष्टि से ग्लोबल गाँव के देवता, गायब होता देश और मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ जैसी रचनाएँ आदिवासी जीवन, संसाधनों पर नियंत्रण, सांस्कृतिक अस्मिता और आधुनिक विकास के अंतर्विरोधों को समझने के लिए उपयोगी पाठ हैं।

प्रस्तुत शोध-पत्र का केंद्रीय प्रश्न यह है कि इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में आदिवासी लोक-संस्कृति किस प्रकार अभिव्यक्त होती है और आधुनिकीकरण की प्रक्रियाएँ उसके वर्तमान स्वरूप को किस प्रकार प्रभावित करती हैं।

**अध्ययन की पृष्ठभूमि एवं साहित्य समीक्षा:-**

आदिवासी साहित्य पर हुए समकालीन अध्ययनों में संस्कृति, पहचान, सामाजिक संघर्ष और विकास की प्रक्रियाओं के बीच संबंध पर विशेष ध्यान दिया गया है। अनिता (2023) ने समकालीन हिंदी उपन्यासों में आदिवासी समाज से जुड़े संघर्षों, शोषण, असमानता और विकास के प्रभावों को रेखांकित किया है। उनका अध्ययन इस बात की ओर संकेत करता है कि आदिवासी समुदायों की समस्याएँ केवल आर्थिक नहीं हैं, बल्कि उनके सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक जीवन से भी संबंधित हैं।

देशमुख (2022) ने इक्कीसवीं सदी के आदिवासी समाज और हिंदी साहित्य के संदर्भ में आधुनिकता, भूमंडलीकरण, औद्योगीकरण तथा बाजारवाद से उत्पन्न परिवर्तनों पर ध्यान केंद्रित किया है। यह अध्ययन समकालीन साहित्य को बदलती सामाजिक वास्तविकताओं के संदर्भ में पढ़ने की आवश्यकता को स्पष्ट करता

है।

गामित (2021) के शोध-प्रबंध समकालीन हिन्दी उपन्यासों में व्यक्त आदिवासी जीवन संघर्ष (2000 से अब तक) में समकालीन हिंदी उपन्यासों के माध्यम से आदिवासी जीवन-संघर्ष के अध्ययन का आधार प्रस्तुत किया गया है। यह शोध वर्तमान विषय के लिए विशेष रूप से प्रासंगिक है, क्योंकि इसमें वर्ष 2000 के बाद के उपन्यासों को अध्ययन के केंद्र में रखा गया है।

विजयन और उमामहेश्वरी (2022) ने भारतीय साहित्य में आदिवासी पहचान तथा साहित्यिक प्रतिनिधित्व के प्रश्न का विश्लेषण किया। उनका अध्ययन यह महत्वपूर्ण सावधानी भी प्रस्तुत करता है कि भारत के विभिन्न आदिवासी समुदायों को एक समान सांस्कृतिक समूह मान लेना उचित नहीं है। उनकी भाषाएँ, ऐतिहासिकपरिस्थितियाँ, धार्मिक

परंपराएँ और सामाजिक संरचनाएँ अलग-अलग हो सकती हैं। इन अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि आदिवासी साहित्य को सामाजिक न्याय, सांस्कृतिक पहचान और ऐतिहासिक अनुभवों के व्यापक संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिए। प्रस्तुत शोध-पत्र इन पूर्ववर्ती अध्ययनों के आधार पर विशेष रूप से लोक-संस्कृति और आधुनिकीकरण के अंतर्संबंधों का विश्लेषण करता है।

**शोध के उद्देश्य:-**

इस शोध के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

1. इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में आदिवासी लोक-संस्कृति के प्रमुख स्वरूपों का अध्ययन करना।

2. आदिवासी समाज की लोकपरंपराओं, लोकगीतों, लोककथाओं, त्योहारों और प्रकृति-केंद्रित जीवन- दृष्टि का विश्लेषण करना।

3. आधुनिकीकरण, औद्योगीकरण, वैश्वीकरण और बाजारवाद के सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभावों का अध्ययन करना।

4. भूमि, जंगल और प्राकृतिक संसाधनों के साथ आदिवासी समुदायों के संबंधों तथा विस्थापन की समस्या का विश्लेषण करना।

5. समकालीन हिंदी उपन्यासों में आदिवासी अस्मिता, सांस्कृतिक प्रतिरोध और सामाजिक परिवर्तन के स्वरूप को समझना।

6. परंपरा और आधुनिकता के बीच संभावित समन्वय तथा सांस्कृतिक संरक्षण की आवश्यकता को रेखांकित करना।

**शोध-पद्धति:-**

प्रस्तुत शोध-पत्र में गुणात्मक, वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक शोध-पद्धति अपनाई गई है। अध्ययन का मुख्य आधार हिंदी साहित्यिक रचनाओं का विषयगत पाठ-विश्लेषण तथा आदिवासी साहित्य से संबंधित उपलब्ध

आलोचनात्मक अध्ययनों की समीक्षा है। विश्लेषण के लिए ग्लोबल गाँव के देवता और गायब होता देश जैसे रणेंद्र के उपन्यासों तथा महुआ माजी के मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ को संदर्भ के रूप में लिया गया है। इनके साथ समकालीन हिंदी उपन्यासों में आदिवासी जीवन और साहित्यिक प्रतिनिधित्व पर उपलब्ध शोध-अध्ययनों का उपयोग किया गया है।

पाठ-विश्लेषण में पाँच प्रमुख विषयों पर ध्यान केंद्रित किया गया है: लोक-संस्कृति, प्रकृति और संसाधन, आधुनिकीकरण, विस्थापन तथा सांस्कृतिक अस्मिता। इन विषयों के आधार पर यह समझने का प्रयास किया गया है

कि साहित्य में सामाजिक परिवर्तन किस प्रकार प्रस्तुत होता है। यह एक साहित्य-केंद्रित अध्ययन है। इसमें किसी आदिवासी समुदाय का प्रत्यक्ष क्षेत्रीय सर्वेक्षण अथवा प्राथमिक साक्षात्कार शामिल नहीं हैं। इसलिए इसके निष्कर्ष चयनित साहित्यिक पाठों और उपलब्ध आलोचनात्मक अध्ययनों तक सीमित हैं। उपन्यासों में प्रस्तुत अनुभवों को सभी आदिवासी समुदायों की वास्तविक स्थिति का समान प्रतिनिधित्व नहीं माना जाना चाहिए।

**आदिवासी समाज की लोक-संस्कृति का स्वरूप:-**

**1 लोक-संस्कृति और सामुदायिक जीवन**

लोक-संस्कृति किसी समुदाय के सामूहिक अनुभवों, ऐतिहासिक स्मृतियों, विश्वासों और जीवन-पद्धतियों का

संचय होती है। आदिवासी समाज के अनेक समुदायों में लोक-संस्कृति दैनिक जीवन और सामुदायिक संबंधों से गहराई से जुड़ी रहती है। सामूहिक श्रम, पारंपरिक उत्सव, विवाह-संस्कार, जन्म और मृत्यु से संबंधित रीति-रिवाज तथा सामुदायिक निर्णय की व्यवस्थाएँ सांस्कृतिक जीवन को निरंतरता प्रदान करती हैं। आदिवासी समाजों की सांस्कृतिक विशेषताओं को समझते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि भारत में अनेक अलग-अलग आदिवासी समुदाय निवास करते हैं। संथाल, मुंडा, उराँव, गोंड, भील और अन्य समुदायों की भाषाओं, रीति-रिवाजों और सांस्कृतिक परंपराओं में विविधता पाई जाती है। इसलिए किसी एक समुदाय की परंपरा को संपूर्ण आदिवासी समाज की संस्कृति मानना उचित नहीं है। समकालीन हिंदी उपन्यासों में सामुदायिक जीवन का चित्रण प्रायः व्यक्ति और समुदाय के संबंधों के माध्यम से किया जाता है। व्यक्ति की पहचान केवल उसकी व्यक्तिगत उपलब्धियों से नहीं, बल्कि परिवार, गाँव, भूमि, भाषा और सामूहिक स्मृतियों से भी जुड़ी होती है। इस कारण जब समुदाय की जीवन-पद्धति में परिवर्तन होता है, तो उसका प्रभाव केवल आर्थिक गतिविधियों पर नहीं पड़ता, बल्कि सामाजिक संबंधों और सांस्कृतिक पहचान पर भी पड़ता है।

**2 लोकगीत, लोककथाएँ और मौखिक परंपराएँ**

लोकगीत और लोककथाएँ आदिवासी सांस्कृतिक जीवन के महत्त्वपूर्ण माध्यम हैं। इनके माध्यम से समुदाय अपने इतिहास, अनुभवों, विश्वासों, प्रकृति संबंधी ज्ञान और सामाजिक मूल्यों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाता है। विवाह, फसल, ऋतु-परिवर्तन, श्रम, उत्सव और सामुदायिक जीवन से संबंधित गीत दैनिक जीवन को सांस्कृतिक अर्थ प्रदान करते हैं। मौखिक परंपराओं की विशेषता यह है कि वे केवल मनोरंजन का साधन नहीं होतीं। उनमें समुदाय की स्मृति, सामाजिक संबंधों और पर्यावरणीय अनुभवों का संचय भी होता है। लोककथाओं के माध्यम से किसी क्षेत्र के पशु-पक्षियों, नदियों, पहाड़ों, जंगलों और पूर्वजों से जुड़ी धारणाएँ व्यक्त होती हैं। आधुनिक साहित्य में इन परंपराओं का उपयोग आदिवासी जीवन की विशिष्टता को सामने लाने के लिए किया जाता है। लोकगीतों और कथात्मक

स्मृतियों का समावेश उपन्यास की भाषा तथा कथानक को स्थानीय सांस्कृतिक संदर्भ प्रदान कर सकता है। सेन और कौर (2024) का अध्ययन भी हिंदी के आदिवासी उपन्यासों

में लोक-संस्कृति, विशेषकर लोकगीतों, की भूमिका की ओर ध्यान आकर्षित करता है। हालाँकि लोक-संस्कृति को साहित्य में प्रस्तुत करते समय यह आवश्यक है कि उसे केवल आकर्षक दृश्य अथवा मनोरंजन के रूप में सीमित न कर दिया जाए। उसका वास्तविक महत्त्व उन सामाजिक अनुभवों में है जो इन गीतों, कथाओं और परंपराओं के माध्यम से अभिव्यक्त होते हैं।

**3 प्रकृति, जंगल और सांस्कृतिक पहचान**

आदिवासी समाज की अनेक सांस्कृतिक परंपराओं में जंगल, पहाड़, नदियाँ, भूमि और जैव विविधता का विशेष महत्त्व है। ये प्राकृतिक संसाधन केवल आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं करते, बल्कि धार्मिक विश्वासों, सामुदायिक स्मृतियों और सांस्कृतिक पहचान से भी जुड़े हो सकते हैं। वनों से प्राप्त खाद्य पदार्थ, औषधीय पौधे, लकड़ी, पत्ते और अन्य संसाधन अनेक समुदायों की पारंपरिक आजीविका का हिस्सा रहे हैं। प्राकृतिक चक्रों के अनुसार कृषि, उत्सव और सामुदायिक गतिविधियों का आयोजन पर्यावरण के साथ विकसित संबंधों को दर्शाता है। इस संदर्भ में जंगल को केवल बाजार में बेची जा सकने वाली वस्तु के रूप में देखना आदिवासी जीवन की

सांस्कृतिक जटिलता को सीमित कर देता है। जब किसी समुदाय को उसकी पारंपरिक भूमि से अलग किया जाता है, तो वह केवल आवास अथवा रोजगार ही नहीं खो सकता, बल्कि उन स्थानों से जुड़ी स्मृतियों, अनुष्ठानों और सामुदायिक संबंधों से भी दूर हो सकता है। रणेंद्र के उपन्यासों में प्राकृतिक संसाधनों, खनन और विकास की प्रक्रियाओं से जुड़े प्रश्नों को आदिवासी जीवन के व्यापक संदर्भ में समझा जा सकता है। इस प्रकार प्रकृति उपन्यासों में केवल पृष्ठभूमि नहीं रहती, बल्कि सामाजिक संघर्ष और सांस्कृतिक अस्तित्व का केंद्रीय विषय बन जाती है।

**इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में आदिवासी समाज का चित्रण**

**1 ग्लोबल गाँव के देवता और वैश्वीकरण का प्रभाव**

रणेंद्र का उपन्यास ग्लोबल गाँव के देवता आदिवासी समाज, प्राकृतिक संसाधनों और आधुनिक विकास की प्रक्रियाओं के अंतर्संबंधों को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण है। उपन्यास का शीर्षक ही स्थानीय जीवन और वैश्विक आर्थिक शक्तियों के बीच संबंधों की ओर संकेत करता है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया में स्थानीय संसाधन व्यापक बाजार व्यवस्था का हिस्सा बनते हैं। खनिज, भूमि और वन-संपदा का आर्थिक मूल्य बढ़ने के साथ उन क्षेत्रों में रहने वाले समुदायों के अधिकारों का प्रश्न भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है। उपन्यास को इस दृष्टि से पढ़ा जा सकता है कि विकास संबंधी निर्णयों में स्थानीय समुदायों के अनुभव और हित किस सीमा तक शामिल किए जाते हैं। आदिवासी समाज के लिए भूमि और

जंगल का महत्त्व बहुआयामी होता है। वहीं आधुनिक आर्थिक व्यवस्था में इन्हें प्रायः उत्पादन, निवेश और औद्योगिक उपयोग की दृष्टि से देखा जाता है। इन दोनों दृष्टिकोणों के बीच

उत्पन्न तनाव साहित्यिक संघर्ष का आधार बनता है।

**2 गायब होता देश और आदिवासी अस्तित्व का संकट**

रणेंद्र का गायब होता देश समकालीन आदिवासी जीवन, संसाधनों और सांस्कृतिक अस्तित्व से जुड़े प्रश्नों पर

विचार करने का एक अन्य महत्त्वपूर्ण साहित्यिक संदर्भ है। इस उपन्यास के शीर्षक में निहित 'देश' की अवधारणा को केवल राजनीतिक भूगोल तक सीमित न रखकर स्थानीय जीवन-जगत, सामुदायिक पहचान

और सांस्कृतिक स्मृतियों के संदर्भ में भी समझा जा सकता है। आदिवासी समुदायों के लिए किसी स्थान का अर्थ केवल रहने की जगह नहीं होता। उससे जुड़ी लोककथाएँ, पूर्वजों की स्मृतियाँ, धार्मिक स्थल, सामुदायिक परंपराएँ और आजीविका की व्यवस्थाएँ भी उस स्थान की पहचान बनाती हैं। जब विकास परियोजनाओं अथवा अन्य सामाजिक-आर्थिक प्रक्रियाओं के कारण यह संबंध टूटता है, तो सांस्कृतिक अस्तित्व पर भी प्रभाव पड़ सकता है। आधुनिक विकास की आलोचना करते समय यह समझना आवश्यक है कि समस्या हर प्रकार के परिवर्तन में नहीं, बल्कि ऐसे परिवर्तन में है जिसमें प्रभावित समुदायों की सहमति, भागीदारी और अधिकारों की उपेक्षा की जाती है। गायब होता देश को इसी व्यापक प्रश्न के संदर्भ में पढ़ा जा सकता है कि विकास के दौरान स्थानीय समुदायों के जीवन-जगत और सांस्कृतिक पहचान की रक्षा कैसे की जाए।

**3 मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ और आधुनिक विकास की जटिलताएँ**

महुआ माजी का उपन्यास मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ आदिवासी जीवन और आधुनिक औद्योगिक विकास के बीच संबंधों पर विचार करने के लिए एक उपयोगी साहित्यिक संदर्भ है। इस रचना को पढ़ते समय पर्यावरण, औद्योगिक गतिविधियों, वैज्ञानिक विकास और स्थानीय समुदायों के जीवन पर उनके प्रभाव से संबंधित प्रश्नों

पर ध्यान दिया जा सकता है। आधुनिकता ने चिकित्सा, शिक्षा, संचार और तकनीकी विकास के माध्यम से अनेक सुविधाएँ उपलब्ध कराई हैं। किंतु औद्योगिक गतिविधियों के पर्यावरणीय प्रभावों तथा संसाधनों के उपयोग से संबंधित प्रश्न भी महत्त्वपूर्ण हैं। यदि विकास परियोजनाएँ स्थानीय पर्यावरण को नुकसान पहुँचाती हैं, तो उसका प्रभाव स्वास्थ्य, आजीविका और सांस्कृतिक जीवन पर पड़ सकता है। इस उपन्यास के संदर्भ में आधुनिक विकास को एक जटिल प्रक्रिया के रूप में समझना आवश्यक है, जिसमें वैज्ञानिक प्रगति, औद्योगिक हित, पर्यावरणीय परिणाम और

सामाजिक न्याय परस्पर जुड़े होते हैं। साहित्य इन पक्षों के बीच संबंधों को सामने लाकर पाठक को विकास की मानवीय कीमत पर विचार करने के लिए प्रेरित करता है।

**आधुनिकीकरण का आदिवासी लोक-संस्कृति पर प्रभाव**

**1 औद्योगीकरण और आर्थिक परिवर्तन**

आधुनिकीकरण की प्रमुख प्रक्रियाओं में औद्योगीकरण का विशेष स्थान है। खनन, कारखानों, परिवहन परियोजनाओं और शहरी विस्तार के कारण कई आदिवासी क्षेत्रों की अर्थव्यवस्था में परिवर्तन आया है। इन परिवर्तनों से रोजगार के अवसर पैदा हो सकते हैं, लेकिन पारंपरिक आजीविका के साधनों पर दबाव भी बढ़

सकता है। यदि किसी क्षेत्र में वन-आधारित आजीविका या पारंपरिक कृषि पर निर्भर समुदायों को उनकी भूमि से अलग होना पड़ता है, तो उन्हें वैकल्पिक रोजगार की तलाश करनी पड़ सकती है। इस प्रक्रिया में पारंपरिक कौशल और ज्ञान का उपयोग सीमित हो सकता है। अस्थायी रोजगार, कम मजदूरी और शहरी क्षेत्रों में असुरक्षित काम जैसी समस्याएँ भी सामने आ सकती हैं। आर्थिक परिवर्तन का सांस्कृतिक जीवन से गहरा संबंध है। जब लोग रोजगार के लिए दूरस्थ क्षेत्रों में जाते हैं, तो सामुदायिक उत्सवों में उनकी भागीदारी प्रभावित हो सकती है। पारिवारिक संबंधों, स्थानीय भाषाओं के प्रयोग और पारंपरिक ज्ञान के हस्तांतरण में भी बदलाव आ सकता है। हालाँकि सभी आर्थिक परिवर्तन नकारात्मक नहीं होते। बेहतर आय, शिक्षा और रोजगार के अवसर समुदायों की सामाजिक स्थिति को मजबूत भी कर सकते हैं। वास्तविक प्रश्न यह है कि विकास के लाभ किसे प्राप्त होते हैं तथा उसकी लागत का भार किन समुदायों पर पड़ता है।

**2 विस्थापन और सांस्कृतिक विघटन**

विस्थापन आदिवासी समाज के सामने उपस्थित सबसे महत्त्वपूर्ण सामाजिक-सांस्कृतिक प्रश्नों में से एक है। बड़े बाँधों, खनन परियोजनाओं, औद्योगिक क्षेत्रों और अन्य विकास कार्यों के कारण जब समुदायों को अपनी भूमि छोड़नी पड़ती है, तो इसका प्रभाव उनकी आर्थिक व्यवस्था से आगे बढ़कर सांस्कृतिक जीवन तक पहुँच सकता है। पारंपरिक गाँवों में परिवार, पड़ोस, सामुदायिक श्रम और स्थानीय अनुष्ठान एक-दूसरे से जुड़े होते हैं। पुनर्वास के दौरान यदि समुदाय के सदस्य अलग-अलग स्थानों पर बसाए जाते हैं, तो इन संबंधों को बनाए रखना कठिन हो सकता है। इससे सामुदायिक सहयोग और पारंपरिक सामाजिक व्यवस्थाएँ कमजोर पड़ सकती हैं। सांस्कृतिक विघटन का एक अन्य पक्ष स्मृति और स्थान के संबंध से जुड़ा है। किसी नदी, पहाड़ी, जंगल या पवित्र स्थल से संबंधित लोककथाएँ और धार्मिक विश्वास समुदाय के ऐतिहासिक अनुभव का हिस्सा हो सकते हैं। भौतिक स्थान से अलगाव इन अनुभवों की निरंतरता को प्रभावित कर सकता है। आदिवासी समाज पर आधारित समकालीन साहित्य में विस्थापन के प्रश्न को केवल भौतिक

स्थानांतरण के रूप में नहीं, बल्कि अधिकार, पहचान और सामाजिक न्याय के प्रश्न के रूप में समझना आवश्यक है (Anitha, 2023)। इस दृष्टि से साहित्य विकास की उन सीमाओं को सामने लाता है जिन्हें केवल आर्थिक उपलब्धियों के आधार पर नहीं मापा जा सकता।

**3 भाषा और सांस्कृतिक पहचान**

भाषा किसी भी समुदाय की सांस्कृतिक स्मृति का महत्त्वपूर्ण आधार है। आदिवासी भाषाओं में लोकगीतों, कहावतों, मिथकों, पारंपरिक ज्ञान और सामाजिक अनुभवों का विशाल भंडार मौजूद है। भाषा के माध्यम से

ही अनेक सांस्कृतिक अर्थ पीढ़ियों तक पहुँचते हैं। आधुनिक शिक्षा और प्रशासन में प्रमुख भाषाओं का बढ़ता प्रयोग आदिवासी बच्चों के लिए नए अवसर उपलब्ध करा सकता है। किंतु यदि मातृभाषा के प्रयोग को पर्याप्त स्थान न मिले, तो स्थानीय भाषाओं के प्रति सामाजिक दूरी बढ़ने का जोखिम भी रहता है। भाषाई परिवर्तन का अर्थ हमेशा सांस्कृतिक विनाश नहीं होता। समुदाय बहुभाषिकता अपनाकर अपनी मातृभाषा के साथ अन्य भाषाओं का भी उपयोग कर सकते हैं। चुनौती यह है कि शिक्षा, रोजगार और आधुनिक संचार की आवश्यकताओं को पूरा करते हुए मातृभाषाओं तथा मौखिक परंपराओं को भी सुरक्षित रखा जाए। हिंदी उपन्यासों में स्थानीय शब्दावली, लोकप्रयोग, कथात्मक शैली और मौखिक परंपराओं का समावेश आदिवासी जीवन के सांस्कृतिक संदर्भों को व्यक्त करने में सहायक हो सकता है। इसके लिए लेखक की संवेदनशीलता और भाषाई प्रामाणिकता महत्त्वपूर्ण है।

**4 शिक्षा, तकनीक और सामाजिक जागरूकता**

आधुनिकीकरण का एक सकारात्मक पक्ष शिक्षा और संचार के अवसरों का विस्तार है। शिक्षा के माध्यम से आदिवासी समुदायों के युवा उच्च शिक्षा, रोजगार, प्रशासन और राजनीतिक भागीदारी के नए अवसर प्राप्त कर सकते हैं। डिजिटल तकनीक स्थानीय समस्याओं को सार्वजनिक विमर्श तक पहुँचाने और सांस्कृतिक सामग्री को सुरक्षित रखने में भी सहायता कर सकती है। मोबाइल फोन, इंटरनेट, डिजिटल अभिलेखागार और सामाजिक संचार मंच लोकगीतों, कथाओं, भाषाओं तथा पारंपरिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण के साधन बन सकते हैं। युवा पीढ़ी अपनी सांस्कृतिक पहचान को नए माध्यमों में प्रस्तुत कर सकती है और स्थानीय मुद्दों पर व्यापक संवाद स्थापित कर सकती है। फिर भी तकनीक तक पहुँच सभी क्षेत्रों में समान नहीं है। इंटरनेट, उपकरणों, डिजिटल शिक्षा और स्थानीय भाषाओं में सामग्री की उपलब्धता में अंतर बना रह सकता है। इसके अतिरिक्त, सांस्कृतिक सामग्री का डिजिटलीकरण करते समय समुदाय की सहमति और पारंपरिक ज्ञान पर उसके अधिकारों का सम्मान आवश्यक है। इस प्रकार शिक्षा और तकनीक को परंपरा के विरोध में खड़ा करने के बजाय ऐसे साधनों के रूप में देखा जा सकता है जिनके माध्यम से समुदाय अपने सांस्कृतिक ज्ञान को सुरक्षित रखते हुए आधुनिक समाज में सक्रिय भागीदारी कर सकें।

**आदिवासी अस्मिता, प्रतिरोध और सांस्कृतिक स्वायत्तता**

आदिवासी अस्मिता का संबंध केवल किसी विशिष्ट जातीय पहचान से नहीं, बल्कि भूमि, भाषा, इतिहास, सामाजिक संबंधों और सामुदायिक अधिकारों से भी जुड़ा होता है। जब किसी समुदाय की संस्कृति अथवा जीवन-पद्धति को पिछड़ा बताकर उसके स्थान पर बाहरी मानकों को स्थापित करने का प्रयास किया जाता है, तो सांस्कृतिक स्वायत्तता का प्रश्न उत्पन्न होता है। समकालीन आदिवासी विमर्श इस बात पर बल देता है कि आदिवासी समुदायों को अपने अनुभवों और दृष्टिकोणों के साथ साहित्य में प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए। उनका चित्रण केवल शोषण और पीड़ा के आधार पर नहीं होना चाहिए, क्योंकि इससे उनकी रचनात्मकता, ज्ञान, सामाजिक संगठन और प्रतिरोध की क्षमता की उपेक्षा हो सकती है। विजयन और उमामहेश्वरी (2022) का अध्ययन साहित्य में आदिवासी अनुभवों को प्रस्तुत करते समय समुदायों की आंतरिक विविधता और उनके सांस्कृतिक संदर्भों को समझने की आवश्यकता को रेखांकित करता है। इसी आधार पर आदिवासी अस्मिता को किसी एक स्थिर परिभाषा में सीमित नहीं किया जा सकता।

हिंदी उपन्यासों में प्रतिरोध अनेक रूपों में व्यक्त हो सकता है। यह भूमि-अधिकार की माँग, सामुदायिक संगठन, सांस्कृतिक परंपराओं के संरक्षण, स्थानीय भाषाओं के प्रयोग और अन्यायपूर्ण निर्णयों के विरोध में दिखाई दे सकता है। साहित्य इन प्रतिरोधों को सामाजिक अनुभव और नैतिक प्रश्नों से जोड़ता है। सांस्कृतिक स्वायत्तता का अर्थ आधुनिक सुविधाओं को अस्वीकार करना नहीं है। इसका आशय यह है कि समुदाय अपने विकास की दिशा निर्धारित करने में भागीदारी कर सके। वह यह तय कर सके कि कौन-से परिवर्तन उसके लिए उपयोगी हैं और किन प्रक्रियाओं से उसकी संस्कृति, पर्यावरण तथा आजीविका को नुकसान पहुँच सकता है।

**लोक-संस्कृति और आधुनिकता के बीच अंतर्संबंध**

परंपरा और आधुनिकता को पूर्णतः विरोधी मानना सामाजिक परिवर्तन की जटिलता को कम करके देखना है। कोई भी जीवंत संस्कृति समय के साथ बदलती रहती है। लोकगीतों की प्रस्तुति के माध्यम बदल सकते हैं, पारंपरिक कला नए बाजारों तक पहुँच सकती है और युवा पीढ़ी अपनी सांस्कृतिक पहचान को आधुनिक शिक्षा तथा तकनीक के साथ जोड़ सकती है। समस्या तब उत्पन्न होती है जब परिवर्तन समुदाय की स्वैच्छिक भागीदारी के बजाय बाहरी दबाव, आर्थिक असमानता या संसाधनों पर नियंत्रण के माध्यम से लागू होता है। ऐसे परिवर्तन समुदाय की सांस्कृतिक निरंतरता को बाधित कर सकते हैं। आधुनिकता के साथ सकारात्मक संवाद के कई रास्ते हो सकते हैं। मातृभाषा आधारित शिक्षा, स्थानीय इतिहास का दस्तावेजीकरण, पारंपरिक कला और शिल्प को उचित बाजार उपलब्ध कराना, समुदाय के नेतृत्व में सांस्कृतिक उत्सव आयोजित करना तथा स्थानीय पर्यावरणीय ज्ञान को सम्मान देना इनमें शामिल हैं। साहित्य इस संवाद को वैचारिक आधार प्रदान करता है। उपन्यास पाठकों को यह समझने में मदद करते हैं कि संस्कृति केवल अतीत की वस्तु नहीं है, बल्कि वर्तमान सामाजिक जीवन में सक्रिय भूमिका निभाती है। लोक-संस्कृति को

सुरक्षित रखने का अर्थ किसी समुदाय को परिवर्तन से दूर रखना नहीं, बल्कि उसके सांस्कृतिक अधिकारों और निर्णय लेने की स्वतंत्रता की रक्षा करना है। इस प्रकार आदिवासी समाज का भविष्य ऐसी विकास-दृष्टि पर निर्भर करता है जो आधुनिक शिक्षा, स्वास्थ्य, तकनीक और आर्थिक अवसरों के साथ स्थानीय ज्ञान, सांस्कृतिक विविधता और पर्यावरणीय संतुलन को भी महत्त्व दे।

**वर्तमान परिदृश्य: प्रमुख चुनौतियाँ और संभावनाएँ**

वर्तमान परिदृश्य में आदिवासी समाज अनेक परस्पर संबंधित चुनौतियों का सामना कर रहा है। इनमें भूमि

और वन संसाधनों पर अधिकार, रोजगार की उपलब्धता, शिक्षा में समान अवसर, मातृभाषाओं का संरक्षण, पर्यावरणीय परिवर्तन और सांस्कृतिक प्रतिनिधित्व शामिल हैं। पहली चुनौती विकास की प्रक्रिया में स्थानीय समुदायों की सार्थक भागीदारी सुनिश्चित करना है। किसी भी परियोजना से संबंधित निर्णयों में प्रभावित लोगों की आवश्यकताओं, अधिकारों और सांस्कृतिक संबंधों को समझना आवश्यक है। केवल भौतिक मुआवजा उपलब्ध करा देना हमेशा सांस्कृतिक और सामाजिक क्षति की भरपाई नहीं कर सकता। दूसरी चुनौती सांस्कृतिक विविधता का संरक्षण है। आदिवासी भाषाओं, मौखिक साहित्य और पारंपरिक ज्ञान के संरक्षण के लिए समुदायों की सक्रिय भागीदारी आवश्यक है। बाहरी संस्थाओं द्वारा किया गया दस्तावेजीकरण तभी प्रभावी होगा जब उसमें स्थानीय लोगों की सहमति और स्वामित्व का सम्मान किया जाए। तीसरी चुनौती साहित्य में प्रामाणिक प्रतिनिधित्व की है। आदिवासी जीवन पर लिखते समय किसी समुदाय को केवल रहस्यमय, पिछड़ा अथवा प्रकृति के साथ एक आदर्श सामंजस्य में रहने वाला समूह मानना उचित नहीं है। समुदायों के भीतर सामाजिक परिवर्तन, लैंगिक संबंध, पीढ़ियों के बीच अंतर और आधुनिक आकांक्षाओं को भी समझना आवश्यक है। चौथी चुनौती आदिवासी महिलाओं के अनुभवों को पर्याप्त स्थान देने की है। महिलाएँ अनेक समुदायों में कृषि, वन-आधारित आजीविका, पारिवारिक जीवन और सांस्कृतिक परंपराओं के संरक्षण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। भूमि, रोजगार और विस्थापन से संबंधित परिवर्तनों का प्रभाव उनके जीवन पर विशिष्ट रूपों में पड़ सकता है। इसलिए आदिवासी विमर्श को महिलाओं की आवाज़ और अनुभवों को भी शामिल करना चाहिए।

इन चुनौतियों के बावजूद अनेक संभावनाएँ मौजूद हैं। शिक्षा, डिजिटल माध्यम, साहित्यिक प्रकाशन, स्थानीय संगठन और सांस्कृतिक पुनरुत्थान के प्रयास आदिवासी समुदायों को अपनी पहचान व्यक्त करने के नए अवसर प्रदान कर सकते हैं। हिंदी साहित्य इन आवाज़ों को व्यापक पाठक-वर्ग तक पहुँचाने और सांस्कृतिक विविधता के प्रति संवेदनशीलता विकसित करने में योगदान दे सकता है।

**निष्कर्ष:-**

प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष सामने आते हैं:

प्रथम, आदिवासी लोक-संस्कृति सामुदायिक जीवन, मौखिक परंपराओं, लोकगीतों, स्थानीय भाषाओं और प्रकृति के साथ विकसित संबंधों से निर्मित होती है। इसे केवल धार्मिक अनुष्ठानों अथवा पारंपरिक उत्सवों तक सीमित नहीं किया जा सकता।

द्वितीय, इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यास आदिवासी समाज और आधुनिक विकास के बीच उत्पन्न तनावों को साहित्यिक रूप में व्यक्त करते हैं। भूमि, जंगल, खनन, औद्योगीकरण और विस्थापन के प्रश्न सांस्कृतिक पहचान से गहराई से जुड़े हुए हैं।

तृतीय, आधुनिकीकरण के प्रभाव एकसमान नहीं हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और तकनीक नए अवसर उपलब्ध करा सकते हैं, जबकि असमान विकास, संसाधनों पर बाहरी नियंत्रण और जबरन विस्थापन सांस्कृतिक तथा आर्थिक संकट उत्पन्न कर सकते हैं।

चतुर्थ, साहित्य में आदिवासी समुदायों का प्रतिनिधित्व करते समय उनकी आंतरिक विविधता, ऐतिहासिक परिस्थितियों और स्वयं अपनी पहचान व्यक्त करने की क्षमता को महत्त्व देना आवश्यक है। पंचम, लोक-संस्कृति और आधुनिकता के बीच समन्वय संभव है, बशर्ते परिवर्तन की प्रक्रिया में समुदाय की सहमति, सांस्कृतिक अधिकार और सामाजिक न्याय को प्राथमिकता दी जाए।

षष्ठ, आदिवासी साहित्य केवल शोषण और संघर्ष का दस्तावेज नहीं है। यह सामुदायिक स्मृति, सांस्कृतिक सृजनशीलता, प्रतिरोध, आत्मसम्मान और वैकल्पिक विकास-दृष्टि का भी प्रतिनिधित्व करता है।

**उपसंहार:-**

इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में आदिवासी समाज की लोक-संस्कृति और आधुनिकीकरण के प्रभावों का अध्ययन भारतीय समाज में विकास, विविधता और सामाजिक न्याय के प्रश्नों को समझने का महत्त्वपूर्ण माध्यम है। आदिवासी जीवन की सांस्कृतिक संरचना भूमि, जंगल, भाषा, लोकपरंपराओं और सामुदायिक संबंधों से गहराई से जुड़ी हुई है। इसलिए उसके सामाजिक परिवर्तन का मूल्यांकन केवल आर्थिक उपलब्धियों अथवा भौतिक सुविधाओं के आधार पर नहीं किया जा सकता। रणेंद्र के ग्लोबल गाँव के देवता और गायब होता देश तथा महुआ माजी के मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ जैसे उपन्यास आधुनिक विकास की प्रक्रियाओं और स्थानीय समुदायों के अनुभवों के बीच संबंधों पर विचार करने के अवसर प्रदान करते हैं। इन रचनाओं के संदर्भ में यह समझा जा सकता है कि औद्योगीकरण और वैश्वीकरण से

उत्पन्न परिवर्तन आर्थिक जीवन के साथ सांस्कृतिक पहचान, पर्यावरण और सामुदायिक अस्तित्व को भी प्रभावित कर सकते हैं। फिर भी आदिवासी समाज को केवल परिवर्तन का निष्क्रिय शिकार मानना उचित नहीं है। वह अपनी सांस्कृतिक परंपराओं को नए माध्यमों में प्रस्तुत करने, शिक्षा और तकनीक का उपयोग करने तथा अपने अधिकारों के लिए संगठित होने की क्षमता रखता है। लोक-संस्कृति कोई स्थिर अवशेष नहीं, बल्कि बदलते सामाजिक संदर्भों में विकसित होने वाली जीवंत परंपरा है।

अतः आवश्यक है कि आधुनिक विकास की अवधारणा को अधिक समावेशी बनाया जाए। शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और तकनीकी प्रगति के साथ-साथ सांस्कृतिक विविधता, स्थानीय भाषाओं, पर्यावरणीय संतुलन और समुदायों के निर्णय लेने के अधिकारों की रक्षा की जाए। हिंदी साहित्य इस दिशा में सामाजिक चेतना विकसित करने और आदिवासी अनुभवों को व्यापक विमर्श का हिस्सा बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। अंततः कहा जा सकता है कि आदिवासी लोक-संस्कृति का संरक्षण आधुनिकता को अस्वीकार करने में नहीं, बल्कि ऐसी विकास-दृष्टि विकसित करने में निहित है जो परंपरा और परिवर्तन, स्थानीय ज्ञान और आधुनिक विज्ञान तथा आर्थिक प्रगति और सांस्कृतिक स्वायत्तता के बीच संतुलन स्थापित कर सके।

**संदर्भ-सूची:-**

1. Anitha, P. L. (2023). Tribal society in contemporary Hindi novels: Struggles, issues and social reality. ShodhKosh: Journal of Visual and Performing Arts, 4(2), 4239–4242.

2. Deshmukh, N. (2022). 21वीं सदी का आदिवासी समाज और हिंदी साहित्य [21st-century Adivasi society and Hindi literature]. ResearchGate.

3. Gamit, F. G. (2021). समकालीन हिन्दी उपन्यासों में व्यक्त आदिवासी जीवन संघर्ष (2000 से अब तक) [Contemporary Hindi novels and the struggles of Adivasi life from 2000 onward] [Doctoral dissertation, Gujarat University]. Shodhganga.

4. माजी, म. (2012). मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ [Marang Goda Neelkanth Hua]. (प्रयुक्त संस्करण का प्रकाशक एवं वर्ष सत्यापित करें।)

5. रणेंद्र. (2009). ग्लोबल गाँव के देवता [Global Gaon Ke Devta]. (प्रयुक्त संस्करण का प्रकाशक

एवं वर्ष सत्यापित करें।)

6. रणेंद्र. (2014). गायब होता देश [Gayab Hota Desh]. (प्रयुक्त संस्करण का प्रकाशक एवं वर्ष सत्यापित करें।)

7. सेन, आर. के., एवं कौर, एम. (2024). हिंदी के आदिवासी उपन्यासों में निहित लोक संस्कृति: लोक गीतों का विशेष अध्ययन [Folk culture in Hindi Adivasi novels: A special study of folk songs]. ResearchGate.

8. Vijayan, D. G., & Umamaheshwari, S. (2022). An empirical analysis of tribal identity in Indian literature. Contemporary Voice of Dalit.